दिव्यांग बच्चों की शिक्षा में योग का मनोवैज्ञानिक अनुप्रयोग

धनंजय भारती
शोध छात्र, शिक्षा संकाय (कमच्छा),
बी0एच0यू0, वाराणसी
डॉ0 छाया सोनी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय (कमच्छा),
बी0एच0यू0, वाराणसी

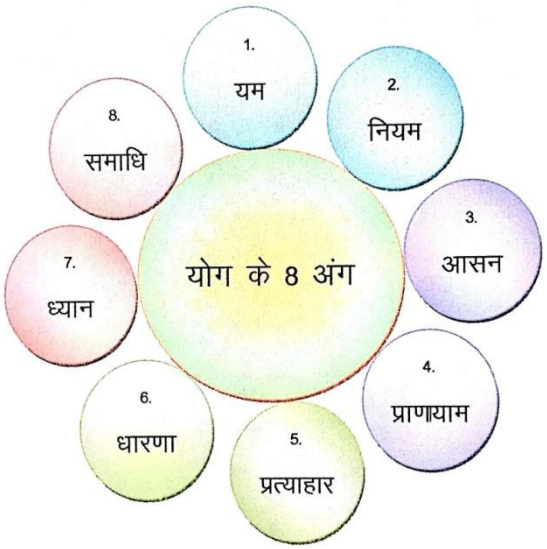
सारांश

मानव संसार के सभी जीवों में एक सर्वोत्कृष्ट एवं अनमोल कृति है। इस अनमोल कृति का संरक्षण करना, स्वस्थ रखना तथा उचित ढंग से उपयोग करना मनुष्य का प्रमुख कर्तव्य है। प्राकृतिक, नैसर्गिक, अनुशासन एवं मनुष्य द्वारा निर्मित नियमों व कानूनों का दिन–प्रतिदिन उल्लंघन किया जा रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक क्रिया–कलापों में बाधा पहुँच रही है। इन बाधाओं के कारण मनुष्य विभिन्न प्रकार के रोगों एवं मनोरोगों से ग्रसित हो रहा है जिसके कारण से शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से विभिन्न प्रकार के कार्यों को करने की क्षमता में कमी आ रही है। मनुष्य में इन्हीं शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से कार्य करने की अक्षमता को विकलांगता की संज्ञा दी जाती है। यह विकलांगता जन्म से पूर्व, जन्म के समय तथा जन्म के बाद भी हो सकती है। दिव्यांगजनों के परिप्रेक्ष्य में योग साधारण व्यायाम नहीं है बल्कि यह एक नवीन जीवन–पद्धति में सुगमता लाने का अत्यन्त प्रभावकारी साधन है जो शरीर की कार्य क्षमता एवं मनोबल को सही दिशा में बढ़ाता है, जिसके माध्यम से विकलांगता को पूर्णतः ठीक तो नहीं परन्तु कम (Reduce) जरूर किया जा सकता है।

योग मनुष्य के अनुशासन का व्यवहारिक पक्ष है। योग एवं शिक्षा के माध्यम से मनुष्य के सभी अंगों में समन्वय स्थापित कर शरीर, मन, मस्तिष्क और आत्मा तथा सुषुप्त अवस्था में पड़ी इन्द्रियों को जागृत करके इनका सर्वांगीण विकास किया जा सकता है।

मुख्य बिन्दुः योग, शिक्षा एवं दिव्यांग।

मनुष्य प्रकृति की सबसे सुन्दर एवं अनुपम रचना है। दिव्यांगजनों के जीवन की सुन्दरता एवं सर्वांगीण विकास के लिए योग अत्यन्त आवश्यक है। योग संस्कृत भाषा की धातु **'युज'** से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है जोड़ना अर्थात् आत्मा का परमात्मा से मिलन। योग धर्म नहीं है बल्कि एक साधन है, जिसके अनुप्रयोग से मनुष्य अपने गुप्त या सुषुप्त आत्म–शक्तियों को जागृत तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित करता है। यह जीवन नहीं है बल्कि जीवन जीने का एक कौशल है तथा साथ ही साथ इसके माध्यम से मनुष्य स्वयं को पूर्णरूपेण समझने का भी प्रयास करता है। **गाँधी जी** के अनुसार–**"इसका अर्थ शरीर, मन, आत्मा तथा विचार की सभी शक्तियों का गठबन्धन ही योग की परिकल्पना है।" स्वामी सत्यानन्द सरस्वती** के अनुसार– **"योग अतीत के गर्भ में प्रसुप्त कोई कपोल–कथा नहीं है। यह वर्तमान की सर्वाधिक मूल्यवान् विरासत है। यह वर्तमान युग की अनिवार्य आवश्कता और आने वाले युग की संस्कृति है।"** एक अन्य परिभाषा के अनुसार– **योग अपनी ही ज्ञान उन्नति की विधि है, जिसके द्वारा शरीर, मन, आत्मा तथा बुद्धि के सामूहिक विकास के प्रयास किये जाते हैं।**



महर्षि पतंजलि अपने **'योग दर्शन'** में योग की परिभाषा इस प्रकार दी है–**'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** अर्थात् मन वृत्तियों (रूप–रस–गन्ध–स्पर्श और शब्द के लोभ में दौड़ने) को रोकना योग है। महर्षि पतंजलि के अनुसार योग की आठ शाखाएँ इस प्रकार है–

यम– इसका अर्थ है व्यक्ति का नैतिक अनुशासन। इसमें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य, आदि का पालन किया जाता हैं।

नियम– इससे अभिप्राय सफाई, सन्तोष, धार्मिक अध्ययन तथा ईश्वर के प्रति समर्पण से है।

आसन– इस दिशा में कुछ शारीरिक मुद्रायें, बंध तथा क्रियाएँ हैं, जिससे स्वास्थ्य में वृद्धि तथा मन में स्थिरता आती है।

प्राणायाम– यह क्रिया श्वास पर नियंत्रण कर श्वसन क्रिया में सुधार लाने, रक्त साफ करने तथा मन को शांत करने हेतु की जाती है।

प्रत्याहार– इस क्रिया में मन को इन्द्रियों से मुक्त करने का प्रयास किया जाता है।

धारणा– इसका अर्थ है किसी एक बिन्दु अथवा वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करना। इस क्रिया को करने से एकाग्रशक्ति में वृद्धि होती है।

ध्यान– इसमें सर्वशक्तिमान परमात्मा पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया जाता है।

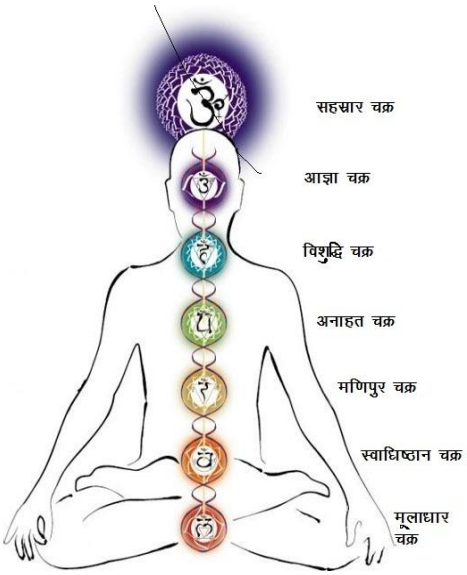
समाधि– यह योग का अन्तिम चरण कहलाता है। इसमें एक योगी अपने आप को सर्वशक्तिमान परमात्मा में लीन कर देता है। इस अवस्था में होते हुए भी वह सचेत रहता है।

योग का प्रमुख लक्ष्य है शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकारों को दूर कर स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण करना। दिव्यांगजनों द्वारा योग को अभ्यास में लाने से पूर्व कुछ नियमों व निर्देशों का अवश्य पालन करना चाहिए, तभी यह लाभदायक सिद्ध हो सकता है। कुछ निर्देश इस प्रकार हैं–

- किसी प्रशिक्षित योग शिक्षक के निर्देशानुसार योग को अभ्यास में लाना चाहिए।
- शांतिपूर्ण, साफ एवं स्वच्छ वातावरण का चुनाव करना चाहिए।
- ब्रह्ममुहूर्त का समय सबसे उपयोगी होता है, इसलिए इस समय का चुनाव करना चाहिए।
- योग अभ्यास के आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान एवं नियमों के बारे में तथा इनके लाभ–हानि के बारे अवश्य जानकारी रखनी चाहिए।
- अपनी विकलांगता की क्षमता एवं योग्यतानुसार आसन, प्राणायाम, धारण, ध्यान को करना चाहिए।
- योग अभ्यास में क्रमबद्धता का पालन किया जाना चाहिए।
- योग अभ्यास में जल्दीबाजी न करे बल्कि एकाग्रचित्त मन से धीरे–धीरे करें।

- प्रारम्भिक अवस्था में योग शुरू करते समय मन में अनेक प्रकार के अच्छे–बुरे, शुभ–अशुभ विचार उत्पन्न होते हैं। इन विचारों पर धीरे–धीरे नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश करें।
- शरीर, मन, मस्तिष्क एवं आत्मा के बीच समन्वयव स्थापित करना तथा परमात्मा का अनुभूति करना चाहिए।

आदि का अभ्यास करने से पूर्व व्यक्ति विशेष की विकलांगता के अनुरूप आवश्यकताओं को पूर्णतः ध्यान में रख कर योग को अनुप्रयोग में लाना चाहिए ताकि अन्य लाभ के साथ–साथ उनके व्यक्तित्व का भी सम्पूर्ण विकास हो।



अनेक प्राचीन ग्रन्थों (उपनिषदों, पुराणों एवं भागवत् आदि) में कुण्डली योग का वर्णन है, जिसके अन्दर सात चक्रों की स्थिति इस प्रकार दर्शायी गयी है, जो इस प्रकार है–

मूलाधार चक्र– गुदा और लिंग के बीच मूलाधार चक्र होता है। इसे आधार चक्र भी कहते हैं। यहाँ आनंद और वीरता का भाव का निवास होता है।

स्वाधिष्ठान चक्र– स्वाधिष्ठान चक्र लिंग मूल में है। इसके जाग्रत होने पर क्रूरता, घमण्ड, आलस्य, प्रमाद, अवज्ञा, अविश्वास आदि दुर्गुणों का नाश होता है।

मणिपुर चक्र– इसका केन्द्र बिन्दु नाभि होती है। इसके सक्रिय होने से तृष्णा, ईर्ष्या, चुगली, लज्जा, भय, घृणा, मोह आदि दूर हो जाते हैं।

अनाहत चक्र– इसका केन्द्र स्थान हृदय है। इसके सक्रिय होने पर लिप्सा, कपट, हिंसा, कुकर्म, चिंता, मोह, अविवेक और अहंकार समाप्त हो जाते हैं।

विशुद्धि चक्र– इसका केन्द्र बिन्दु कण्ठ होता है। इसके जाग्रत होने से भूख और प्यास पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।

आज्ञा चक्र– इसका स्थान दोनों आँखों के बीच (भृकुटी) में होता है। यह अपार शक्तियों और सिद्धियों का केन्द्र बिन्दु होता है।

सहस्रार चक्र– इसका केन्द्र बिन्दु मस्तिष्क का मध्य भाग होता है जहाँ चोटी रखते हैं। यही से मोक्ष का द्वार खुलता है।

ये चक्र नाड़ियों के केन्द्र (पावर हाउस) है। इन्हीं नाड़ियों के माध्यम से ज्ञान मस्तिष्क तक पहुँचता है और ऊर्जा का संचार सम्पूर्ण शरीर में होता है। मनुष्यों की ऊर्जा, स्मृति, मेधा शक्ति आदि इन्हीं चक्रों पर निर्भर करती है।

योग की सात कुण्डलियों के अभ्यास से दिव्यांगजन भी शरीर, मन, मस्तिष्क एवं आत्मा के बीच समन्वयव स्थापित कर सकता है। इससे प्राण शक्ति जाग्रत होती है। सुषुप्त नाड़ियों एवं प्राणशक्ति के जाग्रत होने पर परमात्मा की अनुभूति होने लगती है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति में ऊर्जा का संचार सम्पूर्ण शरीर में होने लगता है जिससे व्यक्ति स्वयं पर नियंत्रण रखकर सुखमय एवं आनन्दित जीवन की अनुभूति करता है। इस ऊर्जा से दिव्यांगजनों में आत्मविश्वास एवं मनोबल बढ़ता है और समाज में उन्हें जीवन जीने की एक नवीन पद्धति मिल जाती है तथा समाज में व्याप्त कुरूतियों एवं भ्रान्तियों से लड़ने की शक्ति भी प्राप्त हो जाती है। आजकल योग का चिकित्सा जगत में साध्य एवं असाध्य रोगों एवं मनोवैज्ञानिक विकारों के निवारण के लिए भी बड़े पैमाने पर अनुप्रयोग किया जा रहा है।

जब बालक जन्म लेता है तो उसके अन्दर जन्मजात शक्तियाँ सुषुप्त अवस्था में विद्यमान रहती हैं। इन विद्यमान शक्तियों को योग के माध्यम से क्रियाशील बनाया जाता है और इसके उपरान्त इन शक्तियों का शिक्षा के माध्यम से विकास किया जाता है, जो मानव द्वारा किये गये व्यवहारों में प्रदर्शित होता है।

गाँधी जी का विचार है कि "**शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा का विकास ही शिक्षा है।**"

यूनानी दार्शनिक **अरस्तू** का कहना है कि **"स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण ही शिक्षा है।"**

इन दोनों परिभाषाओं में काफी समानता दिखाई दे रही है। पहले हम स्वस्थ शरीर की बात करते हैं– स्वस्थ शरीर तभी सम्भव होगा जब हम प्रतिदिन योग करेंगे और योग के माध्यम से ही अन्तर्निहित शक्तियों में हलचल पैदा करेंगे या इन शक्तियों को अचेतन अवस्था से चेतन अवस्था में लायेंगे। चेतन अवस्था में आने के बाद इनके सम्पूर्ण विकास के लिए शिक्षा का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। अर्थात् शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य में अन्तर्निहित शक्तियों का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। ये विकास जब मनुष्य के चारितार्थ में आता है तो मनोवैज्ञानिक पक्षों के अन्तर्गत प्रदर्शित व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं भावनात्मक रूप से कार्य करने की अक्षमता को विकलांगता कहते हैं। **विश्व स्वास्थ्य संगठन (1976)** के अनुसार– **"विकलांगता का व्यक्ति के कार्यवाही प्रदर्शन एवं गतिविधियों के ह्रास का परिणाम है।" अमेरिकन विथ डिसएबिलिटी एक्ट (1990)** के अनुसार– **इसमें निःशक्त व्यक्तियों को एक वर्ग के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जिनकी शारीरिक तथा मानसिक क्षति जीवन के एक अथवा अधिक प्रमुख क्रिया–कलापों को सीमित कर देती है। इस संस्था द्वारा 2008 में संशोधित कर विकलांगता को इस प्रकार व्यापक रूप से परिभाषित किया गया है–(क) एक ऐसी शारीरिक या मानसिक क्षति, जो उस व्यक्ति की प्रमुख जीवन सम्बन्धी गतिविधियों को गम्भीर रूप से सीमित कर देती है या (ख) ऐसा माना जाये कि उसे गम्भीर शारीरिक या मानसिक क्षति का सामना है।**

भारत में विशेष शिक्षा के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण कानून को *'निःशक्तजन अधिनियम'* (Person With Disability, PWD 1995), (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी, Equal Opportunities, Protection of Rights And Full Participation) के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार– "विकलांग व्यक्ति से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जो किसी चिकित्सा प्राधिकारी द्वारा प्रमाणित किसी निःशक्ता (विकलांगता) के कम से कम 40 प्रतिशत से ग्रस्त है।" इस अधिनियम के अन्तर्गत 7 प्रकार की विकलांगता का वर्णन है, जो इस प्रकार है–(1) अन्धता (2) कम दृष्टि (3) कुष्ठ रोग मुक्त (4) श्रवण शक्ति का ह्रास (5) चलन निःशक्तता (6) मानसिक मन्दता (7) मानसिक रूग्णता आदि।

निःशक्तजन अधिनियम 1995 के चार वर्ष पश्चात् राष्ट्रीय न्यास अधिनियम 1999 (National Trust Act, NTA 1999)– अस्तित्व में आया। सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा संचालित यह अधिनियम स्वपरायणता, प्रमस्तिष्कीय पक्षाघात, मानसिक मंदता और बहु–निःशक्त व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय निकाय की गठन की व्यवस्था करता है।

ये विकलांगताएँ जन्म से पूर्व, जन्म के समय तथा जन्म के बाद भी हो सकती हैं और कुछ जन्मजात होती हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानान्तरित होती रहती हैं। योग के माध्यम से आदि विभिन्न

प्रकार की विकलांगता को कम करके समाज की मुख्यधारा से जोड़कर दिव्यांगजनों को पुनः पुनर्वासित किया जा सकता है। दिव्यांग बालक अवसाद, कुण्ठा, तनाव, चिन्ता, दुश्चिन्ता, आदि से शीघ्र ग्रसित हो जाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप इनका सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता है। इनका सर्वांगीण विकास न होने की वजह से ये आक्रामक एवं अवांछित व्यवहार करने लगते हैं। अतः इनकी शिक्षा में योग शिक्षा का मनोवैज्ञानिक प्रयोग करके शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, शैक्षिक, आध्यात्मिक, भावात्मक प्रज्ञा, संवेदनशीलता, बुद्धि, स्मरण शक्ति, अधिगम, अवधान, अन्तर्दृष्टि, सृजनात्मकता, चिन्तन, तर्क, कल्पना, रूचि, अभिरूचि, अभिवृत्ति, अभिक्षमता, व्यक्तित्व तथा जीवन मूल्यों आदि का विकास योग के माध्यम से दिव्यांग बच्चों में किया जा सकता है। योग का महत्व दिव्यांग बच्चों के लिए पहले भी था, आज भी है, और भविष्य में भी रहेगा। दिव्यांग बच्चों की शिक्षा में योग का मनोवैज्ञानिक प्रयोग करके उपरोक्त का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। कुछ बिन्दु इस प्रकार हैं–

अभिवृद्धि एवं विकास– योग के माध्यम से विकलांग बच्चों के अभिवृद्धि एवं विकास में उत्पन्न होने वाले विकारों व अवरोधों को कम किया जा सकता है, जिससे उनका उचित ढंग से अभिवृद्धि एवं विकास हो सके।

शारीरिक विकास– बालक का शारीरिक विकास उसके व्यवहार के साथ–साथ अन्य पक्षों को भी प्रभावित करता है। शारीरिक विकास के अन्तर्गत शरीर रचना, स्नायु मण्डल, मांसपेशीय वृद्धि, गामक तंत्र, अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ आदि प्रमुख रूप से आती है। योग के माध्यम से आदि सभी का विकास दिव्यांग बच्चों में तारंतम्य तरीके से किया जा सकता है।

मानसिक विकास– योग के माध्यम से न केवल शारीरिक विकास होता है, बल्कि मानसिक विकास भी होता है। मानसिक विकास से तात्पर्य मानसिक शक्तियों में वृद्धि होने से है। इसके अन्तर्गत संवेदनशीलता, प्रत्यक्षीकरण, प्रत्यय निर्माण, अवलोकन, ध्यान, स्मृति, कल्पना, चिंतन, तर्क, निर्णय, बुद्धि तथा भाषा अधिगम आदि क्षमताओं को विकास दिव्यांग बच्चों में योग अभ्यास के द्वारा किया जा सकता है।

सामाजिक विकास– इस आधुनिक काल के संक्रान्ति युग के समाज में लोभ, मोह, माया, ईर्ष्या, घृणा, धोखाधड़ी, तीव्र लालसा, स्वार्थ, भ्रष्टाचार तथा एकांकी परिवार आदि बहुत तेजी से मानवीय मूल्यों का स्थान ग्रहण कर रहा हैं, जिसके कारण से व्यक्ति समाज में अकेला महसूस करने लगा है। दिव्यांग बच्चों में हम योग के अनुप्रयोग से शुद्ध विचार, शुद्ध आचरण, शुद्ध चिंतन एवं परस्पर सहयोग की भावना व सामाजिक बुद्धि का विकास कर सकते है। दिव्यांग बच्चों को समाज का अभिन्न अंग मानकर परस्पर सहायता करना तथा उन्हें सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अवसर प्रदान करना समाज का कर्तव्य है।

नैतिक विकास– वर्तमान समय में देखा जाय तो नैतिक व मानवीय मूल्यों का लगातार क्षरण होता जा रहा है। आज मानव मूल्यों को खोकर मनुष्य केवल भौतिक साधन मात्र बनकर रह गया है। योग की शाखा यम हमें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य पथ पर चलाकर नैतिक अनुशासन सिखाती है।

आध्यात्मिक विकास– आज के वैज्ञानिक युग में आध्यात्मिकता का स्थान भैतिकवाद ले रहा है। इसके प्रति सभी लोगों का विश्वास बढ़ रहा है, जिसके कारण हर व्यक्ति में अनैतिक गुणों का विकास तथा एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ लगी है। व्यक्ति की इच्छाएँ अनन्त होती जा रही है। अतः इन सब बुराईयों को योग के माध्यम से नियंत्रित किया जा सकता है तथा साथ ही साथ पूरे विश्व में योग के माध्यम से आध्यात्मिकता का भी विकास किया जा सकता है।

भावात्मक/सांवेगिक विकास– आज के युग में भय, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, हर्ष, प्रेम, वासना, दुःख, क्षोभ, लोभ, मोह, माया आदि जैसी इच्छाओं को योग के माध्यम से मन को एकाग्रचित्त कर इनकों नियंत्रित किया जा सकता है।

चिंतन, रूचि, अभिरूचि तथा विचारों में परिवर्तन– योग के माध्यम से दिव्यांग बच्चों में स्वस्थ चिंतन, रूचि, अभिरूचि का विकास तथा संकीर्ण विचारों में परिवर्तन लाया जा सकता है।

स्वास्थ्य विकास– अरस्तू के अनुसार– **"स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है।"**

इस कथन से अभिप्राय है कि शरीर का स्वस्थ होना अति आवश्यक है। दिव्यांग बालक अक्सर घर, परिवार, समुदाय तथा समाज से उपेक्षित होने के कारण अवसाद, दुश्चिन्ता, तनाव आदि से कुण्ठित हो जाता है, जिसके कारण उसके स्वास्थ्य में गिरावट होने लगती है। योग के माध्यम से अवसाद, दुश्चिन्ता, तनाव, कुण्ठा आदि को दूर कर सकते हैं तथा इसके साथ–साथ अन्य बिमारियों व विकारों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।

प्रज्ञा, अधिगम तथा स्मरण शक्ति का विकास– दिव्यांग बच्चों में योग के माध्यम से स्वस्थ प्रज्ञा, स्वस्थ अधिगम तथा स्वस्थ स्मरण शक्ति का विकास किया जा सकता है।

व्यक्तित्व का विकास– योग तथा प्राणायाम के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व में निखार लाया जा सकता है। विकलांग बच्चों में शारीरिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा मनोवैज्ञानिक गुणों के माध्यम से भी इनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है।

आज हम एक बदलते हुए सामाजिक परिवर्तन के युग में रह रहे हैं, जिसमें तनाव, दुःख, भ्रष्टाचार तथा स्वास्थ्य पर संकट घर कर चुके हैं। यह माना जा रहा है कि योग के अभ्यास से वर्तमान समय में बहुत सी समस्यायें सुलझायी जा सकती है। इसलिए पश्चिमी देशों में भी योग लगातार लोकप्रिय होता जा रहा है। इस क्रिया की शाखाएँ जैसे–ध्यान, प्राणायाम तथा आसन आदि का चिकित्सा जगत में स्वास्थ्य सुधार, रोगों के उपचार, शारीरिक मुद्रा में सुधार तथा तनावों को कम करने में मनोवैज्ञानिक प्रयोग किया जा रहा है।

वर्तमान समय में योग की सार्थकता– यह सर्वमान्य है कि योग कुछ व्यायामों का संग्रह ही नहीं बल्कि जीवन जीने की एक शैली है। योग जीवन नहीं है, अपितु जीवन जीने की एक कला है। वर्तमान समय में बहुत सी समस्याओं के निदान के लिए योग का सहारा लिया जा रहा है। योग की उत्पत्ति भारत में लगभग 5000 वर्ष पूर्व में हुई थी। यह भारत की प्राचीन संस्कृति का गौरवमयी हिस्सा रहा है, जिसकी वजह से भारत सदियों तक विश्व गुरू रहा है। आज योग भारत का ही नहीं बल्कि विश्व मानव जीवन का एक हिस्सा बन चुका है। कुछ वर्ष पूर्व विश्व में योग के महत्त्व को देखते हुए वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने 21 जून को संयुक्त राष्ट्र संघ में अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का प्रस्ताव रखा, जो संयुक्त राष्ट्र संघ के 177 देशों के सदस्यों ने सर्वसहमति से अविलम्ब पारित कर दिया। आज व्यवहार, वातावरण बदलाव तथा प्रतिस्पर्धा के कारण सामाजिक जीवन शैली में तीव्रता से परिवर्तन आया है। योग का चिकित्सा के क्षेत्र में मनोरोगों एवं अन्य रोगों को नियंत्रित करने के लिए प्रयोग किया जा रहा है। योग समान्य व्यक्ति के तरह दिव्यांगजनों के जीवन शैली में भी परिवर्तन लाता है। विकलांग बालक जब यह धारणा अपने मन में बना लेता है कि वह कुछ नहीं कर सकता है। यह समाज व संसार मेरे लिए उपयोगी नहीं हैं अर्थात् वह जीवन को पुनर्जन्मों का फल तथा समाज पर बोझ समझ कर जीने लगता है तो वह अवसाद व विभिन्न प्रकार के समस्याओं ग्रसित हो जाता है। योग के जरिए दिव्यांग बच्चों की स्वयं के प्रति नकारात्मक धारणा एवं समाज में व्याप्त भ्रान्तियों को दूर किया जा सकता है, तथा इनके अन्तर्निहित क्षमता का समुचित विकास किया जा सकता है। योग के माध्यम से ही इनके जीवन में सुधार तथा व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर समाज की मुख्यधारा से जोड़ा जा सकता है जिससे वे सामान्य व्यक्तियों की तरह समाज में अपना जीवन सम्मानपूर्वक जी सके।

आज सभी क्षेत्रों में मनुष्यों ने प्रगति की है। शोधकर्त्ता एवं वैज्ञानिकों ने हमारे जीवन शैली को बदलकर रख दिया है। धन–सम्पत्ति ने मानव हृदय को कठोर बना दिया है। मानव जीवन मूल्यों का निरन्तर ह्रास हो रहा है। शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक विकार का कारण तनाव तथा दबाव है। इसलिए वर्तमान में भाग–दौड़ भरी जिन्दगी में योग का समावेशन हमारे दैनिक जीवनचर्या में होना चाहिए। यह हमारे व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, अतीन्द्रिय और आध्यात्मिक सभी पक्षों को मजबूत करता है। व्यवहारिक स्तर पर योग शरीर, मन, मस्तिष्क एवं भावनाओं में संतुलन एवं सामंजस्य स्थापित करता है और कार्य क्षमता को भी बढ़ाता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व एवं निजी क्षमता या आवश्कतानुसार इनमें से उपयुक्त योग विधि का चयन करना चाहिए। सभी मनुष्यों की वर्तमान समस्याओं को हल करने तथा जीवन मूल्यों को पुनः स्थापित करने में योग की सार्थकता बढ़ी है।

निष्कर्षः– उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि दिव्यांग बच्चों के लिए योग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन है। योग माध्यम से विकलांगता को कम (Reduce) किया जा सकता है। दिव्यांग बच्चों में शारीरिक, मानसिक, समाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक तथा समायोजन क्षमता का विकास करने के साथ–साथ अन्तर्निहित शक्तियों का भी विकास किया जा सकता है, ताकि ये विश्व में अपना स्थान बना सके। इसके साथ ही दिव्यांग बच्चों को पुनर्वासित कर समाज की मुख्यधारा में सम्मलित किया जा सकता है, ताकि ये सामान्य व्यक्तियों की तरह समाज में अपना जीवन सम्मानपूर्वक जी सके और परिवार, समाज व राष्ट्र के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

- गुप्ता, मनोज, योग के दस फायदें Retrived on 10 November, 2016 http://www.achhikhabar.com/2015/06/19/benefits-of-yoga-in-hindi-yog-ke-fayde/
- गुप्ता, एस0पी0, एण्ड गुप्ता, अल्का (2010), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबादः यूनिवर्सिटी रोड।
- मित्तल, ए0के0 (2012), विकलांगता–संक्षिप्त परिचयः इन मित्तल, ए0के0 एवं मित्तल, एस0आर0 दृष्टिबाधा–शिक्षण, दिल्ली : ए.आई.सी.बी.
- शर्मा, अनिता, जीवन जीने की कला योग है Retrived on 10 November, 2016 http://www.achhikhabar.com/2015/06/21/yoga-day-essay-in-hindi-yog-diwas-nibandh/
- शर्मा, अनीता (2013), नैतिक मूल्यों के विकास में मनोवैज्ञानिक उपागमों का व्यवहारिक उपयोग, इन वर्मा, कीर्ति मूल्यपरक शिक्षा कानपुरः विकास प्रकाशन.
- www.google.com

स्वामी विवेकानन्द का धार्मिक चिन्तन व महत्व

डॉ0 अभिलाष सिंह यादव
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान
महामाया राजकीय महाविद्यालय, धनूपुर, इला0

स्वामी विवेकानन्द ने जीवन को जिस रुप में स्वीकार किया था उसका आधार था, वैदान्तिक धर्म। उनकी इच्छा थी कि भारत के सर्वसाधारध में यदि धर्म का संचार हो जाय तब हम छोटी–छोटी समस्याओं से मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। राष्ट्रीय जीवन में व्याप्त बुराइयों को, जड़ता को, तथा उदासीनता को यदि समाप्त करना है तब धर्म का सहारा लेना होगा। सम्पूर्ण भारत में शिक्षित वर्ग की आस्था धर्म से हटने लगी थी क्योंकि धर्म सदाचरण से भिन्न व्यवहार में अभिव्यक्त हो रहा था। स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव ने धर्म के आलोच्य स्वरुप की निन्दा की और वास्वतिक धर्म का मर्म समस्त जनता को समझाया।

स्वामी जी के आविर्भाव के साथ बहुत से उद्देश्य सामने आ खड़े हुए। भारत का कल्याण किस प्रकार से हो सकता है, स्वामी जी ने इस पर घोर चिंतन किया था। उनके सामने मुख्य तीन उद्देश्य थे। सर्वप्रथम वह धर्म को पुनः स्थापित करना चाहते थे। समाज में ऑग्ल भाषा–भाषी लोगों के बढ़ते हुये प्रभाव ने भारतीय युवकों की चिंतना और तर्कनाशक्ति को इस तरह प्रभावित और कुंठित किया था कि वह स्वयं अपने धर्म के प्रति आस्था खो बैठे थे। द्वितीय, हिन्दू समाज में धर्म को जिन हीन दृष्टि से देखा जा रहा था वह दृष्टि नकी अपनी नहीं थी, उस पद ईसाई धर्मावलम्बियों का प्रभाव था। स्वामी जी हिन्दू समाज के लोगों को उनके प्राचीन गौरव की, धर्म की मान्यताओं का स्मरण कराना चाहते थे, उन्हें सच्चे धर्म से सम्बद्ध करना चाहते थे। तृतीय, भारतीय जनमानस को खोया हुआ आत्म–गौरव प्रदान करना इतिहास के धूमिल पृष्ठों पर लिखी भारतीय कहानी को फिर से भारतीय समाज को स्मरण कराना है। इस पुनरावृत्ति से भारतीय जनता में अपने गौरवशाली इतिहास को समझने और अनुसरण करने की प्रवृत्ति जन्म लेगी। भारतीय जनता ने यदि अपनी संस्कृति आध्यात्मिक मान्यताओं तथा इतिहास के प्रति आदर व्यक्त किया तब उसमें पुनर्जीवन आ सकता है।

स्वामी जी धर्म के मनुष्य में निहित देवत्व का प्रतीक मानते थे। धर्म को वह अनुभव और अनुभूति की वस्तु मानते थे। रुढ़ियों और आडम्बरों से मुक्ति का मार्ग अलौकिकतापूर्ण विश्वासों के प्रति भाग दौड़ नहीं, बल्कि जीवन के स्वाभाविक तत्व की प्राप्ति है। यह स्वाभाविक तत्व धर्म है। धर्म के आधार पर वह व्यक्ति और समाज में पवित्रता, भक्ति, विनयशीलता, सत्यता, प्रेम तथा

निःस्वार्थ सेवा की प्रवृत्ति को पुनर्जीवित करना चाहते थे। आध्यात्मिक उन्नति की छाया में भौतिक उन्नति यदि चले तब उनका मूल्य स्थयी हो सकता है, परन्तु यदि आध्यात्मिक मूल्यों को तिलांजलि देकर भौतिक उन्नति की जाय तब मनुष्य में मानवोचित गुणों का अभाव हो जायेगा। यह पतन का प्रतीक है।[1]

भारत का भविष्य :

धार्मिक चिंतन से आबद्ध–स्वामी विवेकानन्द ने एक जिज्ञासु की तरह भारतीय मन को समझा था। भारत के अतीत से उन्होंने अपना आत्मसात किया था। वह भारत के लिये जिस नये सन्देश की रुप–रेखा लेकर आये थे, उसका आधार धर्म था। धर्म के बिना न भारत प्राचीन काल मे गौरवपूर्ण हुआ और न भविष्य में ही गौरवपूर्ण हो पायेगा। अतीत ही दुहाई देने की अवहेलना करने वालों को स्वामी जी यह कहकर प्रताड़ित किया करते थे कि जिस जाति का अपने अतीत से कोई सम्बन्ध नहीं होता वह जाति आने वर्तमान के प्रति तो उदासीन रहती ही है, वह भविष्य के प्रति भी लापरवाह हो जाती है। अतीत हमें एक अच्छे साथी की तरह प्रेरणा देता है।

भारत की विभिन्न समस्यायें हैं। स्वामी जी इन्हें जाति, धर्म और भाषाकी सन्दर्भ में देखते थे। इन समस्याओं के हल करने का मार्ग भी उनके पास धर्म था। मद्रास में अपार जनसमूह के सम्मुख स्वामी जी ने उद्घोषित किया, ''यही वही प्राचीन भूमि है, जिसे दूसरे देशों को जाने के पहले तत्व ज्ञान

ने आकर अपनी वास भूमि बनाई थी; यह वही भारत है, जहॉ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरुप उसके बहने वाले समुद्रकार नद हैं, जहॉ चिरन्तन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरों द्वारा मानो स्वर्गराज के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर संसार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरण रज पड़ चुकी है।

यही दर्शन और धर्म के आदर्शों ने चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहॉ से उमड़ती हुई बाढ़ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्वों ने समग्र संसार को बार–बार प्लावित कर दिया ओर यही भूमि है, जहॉ से पुनः ऐसी ही तरगें उटकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देगी। यह वही भारत है, जो शताब्दियों के आघात विदेशियों के शतशत आक्रमण और सैकड़ों आचार–व्यवहारेां के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है।[2]

उन्हें हिन्दू धर्म की महानता और सार्वदेशिकता में अखण्ड विश्वास था और वह यह कहते अघाते नहीं थे कि ''पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है जो हिन्दू धर्म के समान इतने उच्च स्वर से मानवता की गौरव का उद्देश्य करता हो।''[3]

उनका यह विश्वास था कि ''आध्यात्म विधा के सम्बन्ध में पृथ्वी का कोई भी देश हिन्दुओं का मार्गदर्शन नहीं कर सकता।''[4]

अतीत से भविष्य का निर्माण होता है। भारत के अतीत का निर्माण धर्म तत्व से हुआ था और वर्तमान एवं भविष्य का आधार भी यही धर्म हो सकता है। ''हमारे पास एक मात्र सम्मेलन भूमि है। हमारी पवित्र परम्परा हमारा धर्म। एकमात्र सामान्य आधार वही है, और उसी पर हमें संगठन करना हेागा। यूरोप में राजनीतिक विचार ही राष्ट्रीय एकता का कारण है। किन्तु एशिया में राष्ट्रीय ऐक्य का आधार धर्म ही है। हम जानते है कि भारतीय जन के लिये धार्मिक आदर्श से बड़ा और कुछ भी नहीं है। धर्म ही भारतीय जीवन का मूल मंत्र है। यह केवल सत्य ही नहीं कि धार्मिक आदर्श यहॉ सबसे बड़ा आदर्श है, किन्तु भारत के लिये कार्य करने का एकमात्र सम्भाव्य उपाय यही है। हमने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज, हमारे बल, यही नहीं हमारे जातीय जीवन की मूल भित्ति है। धर्म ही हमारे राष्ट्रीय जीवन का प्राण है। तुम उससे निकल नहीं सकते। अभी और चिरकाल के लिये भी तुम्हें उसी का अवलम्ब ग्रहण करना होगा और तुम्हें उसी के आधार पर खड़ा होना होगा, चाहे तुम्हें इस पर उतना विश्वास हो या न हो, जो मुझे है। तुम इसी धर्म में बंधे हुये हो, और अगर तुम इसे छोड़ दो, तो चूर–चूर हो जाओगे।''[5]

भारत की समस्त समस्याओं के निराकरण के लिये उन्होंने धर्म की बॉह गही। भारत के लिये उनका सन्देश धर्म पर आधारित प्रेम के क्षेत्र, त्याग के क्षेत्र, साहस और निर्भयता के क्षेत्र का विस्तार करना है। स्वामी जी के अनुसार, यदि भारत ने अपने दर्शन से, संस्कृति से और आध्यात्म से, जिनके मूल में धर्म निवास करता है, अपना सम्बन्ध त्याग दिया तो भारत का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। पाश्चात्य समाज के अनुकरण से भारत का कल्याण सम्भव नहीं है, ''हम लोगों में पाश्चात्य जातियेां की नकल करने की इच्छा ऐसी प्रबल होती जाती है कि भले–बुरे का निश्चय अब विचार–बुद्धि, शास्त्र या हिताहित ज्ञान से नहीं किया जाता। गोरे लोग जिस भाव और आचार की प्रशंसा करें, वही अच्छा है और वे जिसकी निन्दा करें, वही बुरा है। अफसोस! इससे बढ़कर मूर्खता का परिचय और क्या होगा।[6] स्वामी जी देश के मानस को रुढ़ियों, अन्ध–विश्वासों और अन्धानुकरण से मुक्त करना चाहते थे। वह तो उपनिषदों, गीता तथा व्यास के सूत्र एवं शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, तथा चैतन्य जैसे महान् पुरुषों की शिक्षाओं को वह धर्म के प्रतीक रुप में स्वीकार करते थे। किस धर्म को श्रेष्ठ कहा जाये, इस विवाद में वह नहीं उलझना चाहते थे। वह तो परम सत्य की खोज में व्यस्त थे।

स्वामी जी कोटि–कोटि भारतीयों में विभिन्न प्रकार की एकता को आवश्यक मानते थे। जातीय आधार पर निम्न से निम्न व्यक्ति के उत्थान को पुनीत धर्म समझना होगा। यही बात नारियेां के उत्थान के सम्बन्ध में करनी होगी। भारत को विश्व के रंग–मंच पर एक विशेष दायित्व का निर्वाह करना है। भारत को वह पहले धर्म के सहारे उठना होगा, गरीबों का सहारा बनना होगा, शिक्षा का विस्तार करना होगा तथा पुरोहितों के प्रपंचों की बुराइयों और सामाजिक अत्याचारों को मिटाना होगा। आध्यात्मिकता के परिवेश में ही उसे जीवित रहना है और विश्व को अपने संदेशों से उपकृत करना है, ''कोई भी व्यक्ति

भारत के राष्ट्रीय जीवन का कोई भी ऐसा काल मुझे दिखलादे जिसमें यहॉ समस्त संसार को हिला देने की क्षमता रखने वाले आध्यात्मिक महापुरुषों का अभाव रहा हो। परन्तु भारत का कार्य आध्यात्मिक हैः और यह कार्य रणभेरी के निदान से या सैन्य दलों के अभियानों से तो पूरा नहीं किया जा सकता। भारत का प्रभाव धरती पर सर्वदा मृदुल ओस कणों की भॉति बरसा है, नीरव और अव्यक्त, पर सर्वदा धरती के सुन्दरतम् सुमनों को विकलित करने वाला। प्रत्येक सभ्य देश में लाखों उस सन्देश की प्रतीक्षा कर रहे हैं जो उन्हें भौतिकता के उस धृणित गर्त में गिरने से बचा देगा, जिसकी ओर आधुनिक अर्थोपासना उन्हें ऑखें मूँदकर ढ़केल रही है।[7]

धार्मिक एकता : अपरिहार्य :

स्वामी विवेकानन्द वेदान्ती धर्म के उस साकार अस्तित्व का सही प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसके अनुसार समानता आत्मा का तत्व है। ईश्वर एक है, अराधना का माध्यम भले ही अलग अलग हो किन्तु उनमें विरोध के लिये कोई भी स्थान नहीं है, हिन्अुओं का ब्रह्म, पररसियों का अहुर्मज्य, बौद्धों का बुद्ध, यहूदियों का जिहोवा, ईसाईयों का स्वर्गस्थ पिता तथा मुसलमानों का मोहम्मद विभिन्न नामों में एक ही शक्ति है। हमें उस शक्ति के लिये आराधना करनी चाहिये, अपने को भिन्न–भिन्न धर्म सम्प्रदायों में विभाजित नहीं करना चाहिये।

धार्मिक एकता को दृढ़ करने से पूर्व यह जान लेना परमावश्यक है कि स्वामी जी सभी धर्मों में मूलभूत एक ही तत्व की समानता अनुभव करते थे। इस कारण से वह कभी भी धर्म परिवर्तन को उपयुक्त अनुभव नहीं करते थे। अपने धर्म की पूजा के साथ–साथ हम दूसरे धर्म के श्रेष्ठ तत्व ग्रहण कर लें, यह बिल्कुल एक पृथक ही बात है, इससे धार्मिक सद्भाव का मार्ग प्रशस्त होगा। ''ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिये और न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। पर हॉ प्रत्येक को चाहिये कि वह दूसरों के सार भाग को आत्मसात करके पुष्टि लाभ करें और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुये अपनी निजी बुद्धि के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो।[8]

मानव धर्म को इसलिये अंगीकृत करता है जिससे उसमें श्रेष्ठ तत्वों का समावेश हो जाये।

प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक राष्ट्र की महानता के लिये तीन बातें आवश्यक है–

(अ). सदाचार की शक्ति में विश्वास।

(ब). ईर्ष्या और सन्देह का परित्याग।

(स). जो सत्कर्म करने के लिये यत्नवान हों या कर रहे हों, उनकी सहायता करना।[9]

''बन्धुओं यदि आप किसी बाह्य सहायता के बिना निराकार परामात्मा की उपासना करने में समर्थ हैं, तो ऐसा ही करें, लेकिन आप लोग उन दूसरें लोगों की निन्दा क्यों करते हैं, जो ऐसा नहीं कर सकते।''[10]

स्वामी विवेकानन्द ने संसार के प्रमुख धर्मों में सार्वभौमिक दार्शनिक तत्व, सार्वभौमिक पोराणिक तत्व, तथा सार्वभौमिक अनुष्ठान तत्व के विद्यमान होने का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। विश्व में सभी धर्म एकाकार या एक हो जायें, ऐसी कल्पना स्वामी जी नहीं करते थे। सभी धर्म–तत्व समान है, हमें विविधता में एकता स्थापित करनी है।किसी सम्प्रदाय या धर्म के मान्य सिद्धान्तों को मिटाना या समाप्त नहीं करना है।कुछ विनाश न करो वरन् उसका गठन करो। यदि हो सके, तो सहायता करेा, नहीं तो चुपचाप हाथ उठाकर खड़े हो जाओ, यदि सहायता न कर सके तो अनिष्ट मत करो। इस मान्य नैतिकता के सहारे हम विश्वधर्म की भावना को दृढ़तर कर सकते हैं। ब्रह्म शिक्षा देने वाले केवल ज्ञान लाभ ही प्रदान कर सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि आत्मा की शिक्षा ग्रहण की जाये। ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म इन चार तत्वों पर सम्पूर्ण धर्म आधार टिके हुये हैं। आत्मा की ब्रह्मस्वरुपता को ज्ञान लेना, तद्रूप हो जाना, उसका साक्षात्कार करना, यही धर्म है– वह केवल सुनने या मान लेने की चीज नहीं है। समस्त मन–प्राण विश्वास की धरोहर है। यही सच्चा धर्म है।

अपने युग के सभी धर्म पुरुषों के प्रति स्वामी जी स्नेह–भाव और श्रद्धा–भाव रखते थे, इसी प्रकार वह सभी धर्मो के प्रति भी उदार थे। इस्लाम के प्रति उनके हृदय में किसी प्रकार का द्वेष नहीं था। इस्लाम के प्रति उनके हृदय में द्वेष भावना इसलिये सम्भव नहीं थी क्योंकि वह सच्चे धर्म के अर्थ को समझते एवं उसका अनुकरण भी करते थे। स्वामी जी के गुरु रामकृष्ण परमहंस ने तो इस्लाम धर्म में

दीक्षा ली थी, फिर भला उनके जीवन पर उस प्रभाव को कैसे ओझिल किया जा सकता था। इस्लाम के प्रति प्रारम्भ में स्वामी जी इसलिये शकालु थे, क्योंकि मुसलमान राजाओं ने अपने धर्म के प्रसार से अधिक हिन्दू मन्दिरों की मूर्तियों को तुड़वाया था, किन्तु यह प्रश्न भी माता महाकाली की कृपा से स्वमेव ही हल हो गया। इस प्रसंग का उल्लेख उनकी शिष्या सिस्टर निवेदिता की पुस्तक 'माई मास्टर' में इस प्रकार है, ''मेरे मन में यह सोचकर बराबर क्षोभ उठता था कि मुसलमानों ने हिन्दुओ के मन्दिरों को क्यों तोड़ा, उनके देवी–देवताओं की मूर्तियों का क्यों भ्रष्ट किया।'' किन्तु आज माता ने मेरे मन को आश्वस्त कर दिया। उन्होंने मुझसे कहा, ''अपनी मूर्तियों को मैं कायम रखूँ या तुड़वा दूँ, यह मेरी इच्छा है। इन बातों पर सोच–सोचकर तू क्यों दुःखी होता है?'' सिस्टर निवेदिता ने अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द के स्वतः कथन को जिन शब्दों में प्रस्तुत किया उनसे इस्लाम धर्म के प्रति उनकी उपेक्षा एवं अनास्था समाप्त होने की संकेतिका हमें मिलती है।

पश्चातवर्ती वर्षों में वेदान्त को स्वामी जी ने इस्लाम धर्म के निकट स्वीकार किया है। इस स्वीकारोक्ति का उल्लेख उनके एक पत्र से मिलता है। यह पत्र उन्होंने अल्मोड़ा प्रवा काल में मोहम्मद सरफराज हुसैन को लिखा था, ''हमें दृढ़ विश्वास है कि वेदान्त के सिद्धान्त कितने की उदार और विलक्षण क्यों न हो, परन्तु व्यावहारिक इस्लाम की सहायता के बिना मनुष्य जाति के महान् जनसमूह के लिये वे मूल्यहीन है। हम मनुष्य जाति को वहॉ पहुॅचाना चाहते हैं, जहॉ न वेद है, न बाइबिल है, न कुरानः परन्तु वह वेद, बाईबिल और कुरान के समन्वय से ही ऐसा हो सकता है। मनुष्य जाति को यह शिक्षा देनी चाहिये कि सब धर्म उस धर्म के उस एकमेव अद्वितीय के भिन्न–भिन्न रुप हैं, इसलिये प्रत्येक व्यक्ति इन धर्मो में से अपना मनोकूल मार्ग चुन सकता है।[11] मस्तिष्क और शरीर में यदि मेल नहीं होगा तो गति की कल्प असम्भव है, इसी प्रकार भारतीय समाज में गतिशीलता के निमित्त वेदान्ती मस्तिष्क को इस्लामी शरीर की अवहेलना नहीं करनी बल्कि प्रगति ओर सद्भाव के लिये उसका साथ उपयोगी है।

धर्म की वैज्ञानिकता में विश्वास व्यक्त करते हुये विवेकानन्द ने कहा ''सभी विज्ञानों की अपनी विशेष पद्धतियॉ होती है, धर्म विज्ञान की भी है। उसकी पद्धतियों की संख्या तो और भी अधिक है, क्योंकि उसकी विषय सामग्री भी अधिक प्रचुर होती है।[12]

मूर्ति–पूजा सहायक प्रतीक– स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को मनुष्य के हाथ में ऐसा सबलमत यन्त्र माना है, जिससे उसकी मुक्ति होनी है। धर्म जड़ता को भंग करता है। मोह, संघर्ष, पलायनवाद, ईर्ष्या एवं संदेह से मुकित दिलाता है। यह दूसरों के अनुभवों से ग्रहण करने वाली वस्तु नहीं है, इसमें अनुभूतिजन्य भावनाओं का सम्मिश्रण है। त्याग, सेवा तथा प्रेम की विविध धारा के प्रेम प्रवाह में धर्म और ईश्वर दोनों की अनुभूति होती है। जिस धर्म में त्याग की आंकाक्षा और सेवा करने की जिज्ञासा ही सर्वाधिक प्रेरक तत्व है। धर्म किसी आस्था पर ही टिका है। यह आस्था व्यक्तिगत धरोहर है। मूर्तिपूजा भी ईश्वर की अनुभूति के माग्र में एक सहायक तत्व है। कुछ व्यक्तियों में यह धारणा है कि मूर्तिपूजा कोरा अंधविश्वास है, अज्ञानता का प्रतीक है एतदर्थ इसे स्वीकार करना जागरुक समाज का अपमान करना है।

स्वामी विवेकानन्द ने मूर्तिपूजा को ध्यान केन्द्रित करने का एक साधन माना। इसकी उपेक्षा करने वालों के लिये उनका स्पष्ट उत्तर था कि इसे कभी भी उच्च मनःस्थिति के साथ सम्बद्ध नहीं किया जा सकता बल्कि ध्यान, याधना के निमित्त सहायक क्रिया के रुप में इसका प्रयोग उचित है। ''मेरे भाइयेां! मन में किसी मूर्ति के बिना आये कुछ सोच सकना उतना ही असम्भव है, जितना श्वास लिये बिना जीवित रहना। साहचर्य के नियमानुसार भौतिक मूर्ति से मानसिक भाव विशेष का उद्दीपन हो जाता हे, अथवा मन में भाव विशेष का उद्दीपन होने से तद्नुरुप मूर्ति विशेष का भी आविर्भाव होता है। इसीलिये तो हिन्दू आराधना के समय ब्राह्म प्रतीक का उपयोग करता है। वह आपको बतलायेगा कि यह ब्राह्म प्रतीक उसके मन को अपने ध्यान के विषय में परमेश्वर में एकाग्रता से स्थिर रहने में सहायता देता है।''[13] हम प्रतीको के सहारे एकाग्रता लाने का प्रयत्न करते हैं, तो क्या अहित करते हैं। हम दूसरों को इस कार्य से न अपमानित करते हैं और न परेशान ही। ''भारतवर्ष में मूर्तिपूजा कोई जघन्य बात नहीं है। वह व्यभिचार की जननी नहीं है। वरन् यह अविकसित मन के लिये उच्च आध्यात्मिक भाव ग्रहण करने का भाव है। अवश्य, हिन्दुओं के बहुतेरे दोष है, उनके अपने कुछ अपवाद है, परन्तु यह ध्यान रखिये कि

उनके वे दोष अपने शरीर को ही उत्पीड़ित करने तक ही सीमित है, वे कभी अपने पड़ोसियों का गला काटने नहीं जाते।''[14]

स्वामी जी इन छोटे–छोटे प्रश्नों पर अपनी शक्ति का क्षय नहीं करना चाहते थे, वह भारत के सम्मुख अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं के निराकरण को आवश्यक मानते थे। यह सही है कि मूर्ति अल्पविकसित मस्तिष्क के लिये एक सहायक प्रतिमान है, पर वह आपको क्या कष्ट देता है? स्वामी जी ऐसे समाज सुधारकों को बड़ी प्रताड़ना देते थे, जो मूर्ति पूजा के खण्डन को सर्वाधिक **महत्वपूर्ण समाज**–सुधार मानते थे। स्वामी जी का यह स्पष्ट मत था कि यह जातियों के आधार पर जो पारस्परिक दुर्व्यवहार चल रहा है, गरीबी हॅस रही है, झोपड़ी बिलख रही है, इनका सही निराकरण होना चाहिये। हमें समाज को उस शिक्षा से अवगत कराना है, जो उसे संघर्षों से लड़ने की प्रेरणा और शक्ति दे सके, जो उसे परहित चिंतन से सक्रिय रहने के लिये तैयार कर सके।

मूर्तिपूजा के समर्थन और विरोध के समय नष्ट करने से अच्छा यह है कि हम गरीबों के दुःखों को दूर करने के लिये विकल्प ढूंढ़ें। गरीबी ने भारत में अज्ञानता से समझौता कर लिया है। इस समझौते को तोड़ने के लिये गरीब का जीवन स्तर उठाना होगा, झाोपड़ी के अंधकार को समाप्त करना होगा। ज्ञान के प्रकाश की किरण उसे नया जीवन देगी। विवेकानन्द चाहते थे कि वेदान्त के आधार पर भारत को चिन्तन के क्षेत्र में एक बार फिर अतीत का गौरव प्राप्त हो जाये, लेकिन उनकी दृष्टि कितनी व्यापक थी कि राष्ट्रीय गौरव की सीमाओं से प्रतिबन्धित नहीं थे। उनकी भावन में अन्तर्राष्ट्रीयता विद्यमान थी।[15]

स्वामी विवेकानन्द का धार्मिक चिन्तन पूरे विश्व के लिये धार्मिक आस्था के प्रतीक के रुप में स्वीकार किया जाता है। जो आज भी प्रासंगिक है।

सन्दर्भ सूचीः–

1. डा0 वीरेन्द्र सिंह, आधुनिक भारतीय राजनीति विचारधारायें पृष्ठ सं0 95
2. विवेकानन्द संचयन पृष्ठ सं0 168
3. स्वामी विवेकानन्द पत्रावली प्रथम भाग (श्री रामकृष्ण आश्रम नागपुर) पृष्ठ सं0 80
4. भारतीय राजनीतिक विचारक डा0 ए0 पी0 अवस्थी पृष्ठ सं0 171
5. विवेकानन्द संचयन पृष्ठ सं0 169
6. सलैक्टेड वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द (खण्ड 9) पृष्ठ सं0 226
7. विवेकानन्द संचयन (विश्व को भारत का सन्देश) पृष्ठ सं0 465–66
8. शिकागो धर्म संसद में अन्तिम भाषण का साथ 27 सितम्बर 1893
9. शिकागो से श्री हरिदास बिहारीदास देसाई को लिखे पत्र से 22 जनवरी 1894
10. भारतीय राजनीतिक चिंतक जीवन मेहता पृष्ठ सं0 108
11. अल्मोड़ा प्रवासकाल में मौ0 सरफराज हुसैन का लिखा पत्र 10 जून सन् 1898
12. आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन डा0 ए0 अवस्थी,डा0आर0के0अवस्थी पृष्ठ सं0 119
13. शिकागों धर्म संसद के सामने हिन्दी धर्म पर पढ़ा लेख 19 सितम्बर सन् 1893
14. शिकागों धर्म संसद के सामने हिन्दी धर्म पर पढ़ा लेख 19 सितम्बर सन् 1893
15. राजनीति विज्ञान डा0 पुखराज जैन पृष्ठ संख्या 111